IJAER/January-February 2016/Volume-4/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

"आजादी से पूर्व भारतीय समाज मे जनजातीय आन्दोलनों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"

डॉ.हरिचरण मीना
व्याख्याता समाजशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सवाईमाधोपुर

सारांशः–

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय समाज में जनजातीय आन्दोलनों की महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय भूमिका रही है। जनजातीय समाज भारतीय समाज का वह भाग है जो देश में आदिकाल से निवास करता आया है। भारत के प्रत्येक हिस्सो मे जनजाति निवास करती है। जनजातियो की भी अनेक श्रेणियां है–सीमांत जनजातियाँ जो उत्तरी–पूर्वी भारत के राज्यों जैसे असम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, असम, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैंड मे निवास करती है। इसके अलावा कुछ अन्य जनजातियाँ भी है जो देश के विभिन्न भू भागो में निवास करती है। भारत के विभिन्न हिस्सो में निवास करने वाली जनजातियां भारत के मुख्यधारा के समाजों से पूरी तरह अलग है और बिल्कुल अलग वातावरण में रहती है। ये लोग जमीन और जंगल के संसाधनों से ही अपना गुजारा करते थे। आजादी से पूर्व अनेक कारण ऐसे रहे हैं, जिनके कारण जनजातीय समुदाय को आन्दोलन करने को मजबूर होना पड़ा। इस अध्ययन मे हम उन कारणों का अध्ययन करेंगे। जनजातीय आन्दोलनों को मुख्य रूप से विभिन्न चरणों में विभाजित करके अध्ययन करेंगे।

मुख्य रूप से जनजातीय आन्दोलनों के कारणों में अंग्रेजो द्वारा भूमि सुधार नीतियाँ लागू करना रहा है। अंग्रेजो द्वारा आदिवासियों का शोषण, अत्याचार इत्यादि भी प्रमुख कारण रहे हैं। भारतीय समाज को समझने के लिए जनजातीय समूदाय के आन्दोलन का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी आवश्यक है।

कठिन शब्दावली – मालिकाना हक, खेतिहर मजदूर, जमीदार, साहूकार, व्यापारी, शोषण, विद्रोह, गुजारा, एकाधिकार, हुकूमत, आंदोलन

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय समाज में जनजातीय आन्दोलनों की महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय भूमिका रही है। जनजाति समुदाय भारतीय समाज वह समुदाय है जो देश मे आदिकाल से निवास करता रहा हैं। भारत के प्रत्येक हिस्से में जनजाति समुदाय निवास करता है। विभिन्न जनजाति समूदायों में भी आपस में कुछ भिन्नताए मिलती है। जहाँ एक ओर सीमान्त जनजातियाँ हैं जो उत्तरी पूर्वी भारत के राज्यो अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, असम, त्रिपुरा और नागालैण्ड में निवास करती है। वही दूसरी और अन्य जनजाति समुदाय भी है, जो देश के विभिन्न भागों में निवास करते हैं। भारत मे निवास करने वाली जनजातियाँ भारत के मुख्यधारा के समाज से पूरी तरह अलग है और अलग वातावरण में रहती है। जनजाति समुदाय के लोग जमीन एवं जंगल के संसाधनों से ही अपना गुजारा करते थे। आजादी से पूर्व ब्रिटिश शासन काल में अनेक कारण ऐसे रहे जिनके कारण जनजाति समुदायो को आन्दोलन करने को मजबूर होना पड़ा । भारत में अंग्रेजों के आने से पहले जनजातियाँ जंगलों में निवास करती थी। क्योंकि जंगलो पर इनका एकाधिकार था और अपनी रोज की आवश्यकताओं जैसे भोजन, पशु चराना, पशुपालन, घरो के निर्माण आदि जंगलो से पैदा होने वाले उत्पादन तथा लकड़ी से ही पूरी होती थी और खेती उनका व्यवसाय था।

अंग्रेजों ने भूमि सुधार नीतियां लागू की जिनके अन्तर्गत जनजातियों के भूमि से पारस्परिक अधिकार समाप्त कर दिये गये। सब जमीनों के मालिक जमींदार बना दिये गये और जनजातियों की जमीनों के मालिक ऐसे लोग हो गये जो उन में से एक नहीं थे यानि आदिवासी नही थे जमादारी प्रथा लागू होने के बाद जनजातियों के लोग अपनी जमीनों पर खेती तो करते थे लेकिन उनका उन जमीनों पर मालिकाना हक नहीं था। केवल खेतिहर मजदूर का रूप मे खेती करने को मजबूर होना पड़ गया। ऐसे में धीरे–धीरे जनजातीय लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली गई और जब जमीनों को बेचने का अधिकार मिला तब जमीदारों ने अपनी जमीने साहूकारों और व्यापारियों के हाथो बेचना शुरू कर दिया। इसमें जनजाति के लोग गरीबी और पिछडेपन की चपेट में आ गये, जिन्दा रहने के लिए उन्हें कर्ज लेने पड़ते थे, कर्जदारों के हाथो उनका सब कुछ बिक गया, कर्ज न चुकाने के कारण उन्हें अपने बच्चे तक बेचने पड़ जाते थे। समय जैसे बीता कीमतें बढ़ने लगी तो उनका जीना मुश्किल हो गया, उनकी कोई सुनने वाला नही था जब शोषण बर्दास्त से बाहर हो गया तब जनजातियों ने अपने सरदारों तथा मुखियाओं के नेतृत्व में हथियार उठा लिये और सत्ता के खिलाफ विद्रोह कर दिया।

जनजातीय आन्दोलनो के मूल मे विभिन्न समस्याये रही है जो उनके जीवनयापन तथा सामाजिक संरचना से सरोकार रखती है। अधिकतर जनजातीय आन्दोलन अंग्रेजो द्वारा जनजातीय जनों के अधिकारों के हनन के विरोध में हुए थे। जनजातीय आन्दोलन के प्रमुख कारणों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

(1) जनजाति की खेती की जमीनों पर गैर जनजातीय लोगों के अधिकार हो गया इससे बाहर के लोगों का जंगलो और खेती की जमीनों पर दखल बढ गया और जनजातीय लोग अपनी ही जमीन से बेदखल हो गये इससे उनका सामाजिक और आर्थिक ढांचा चरमराने लगा ।

(2) ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत में ईसाई मिशनीय आ गये थे और उन्होंने जनजातियों के बीच धर्म प्रचार का काम शुरू कर दिया था। जब ब्रिटिश हुकुमत ने जनजातियों के अधिकार छीने तो ईसाई मिशनरियों ने जनजातियो का साथ नहीं दिया, वे भारत मे उपनिवेशवाद के समर्थक थे।

(3) जंगलात के नये कानून लागू होने से जनजातियो के जंगल और जमीन पर मालिकाना हक उनसे छिन गये और उन पर सरकार का हक हो गया तो जनजातीय लोग जंगलों से लकड़ी नहीं ले सकते थे तथा जंगलों की जमीन पर अपने पशु भी नही चरा सकते थे ।

(4) जमींदारी प्रथा लागू होने से जनजातीय लोग अपनी जमीनो पर किरायेदार बनकर रह गये थे और जमीनों के हक उनके पास से चले गये थे जिनका जंगलों से कोई लेना देना नहीं था। जमीनो से बेदखल होने के बाद जनजातीय लोगो के पास विद्रोह करने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था।

(5) लकड़ी के इस्तेमाल पर टेक्स लगा दिया गया था, सूदखोरो और व्यापारियों ने जमीन पर कब्जे कर लिये थे और वे जंगल के मूल निवासियों का अनेक प्रकार से शोषण करने लगे थे।

(6) पूरा जनजातीय समाज नष्ट होने के कगार पर पहुंच गया था। अपनी ही जमीनों से उखडे और बाहर के लोगों के द्वारा सताये जा रहे आदिवासी जन और अधिक जुल्म बर्दाश्त न कर सके एवं उन्होंने विद्रोह का रास्ता अपनाया।

भारत में हुए जनजातीय आन्दोलनो को दो भागो ने बांटा जा सकता है। एक हिंसक आन्दोलन, दूसरा अहिसक आन्दोलन। अहिसंक आन्दोलनों में हिंसा नहीं होती थी। जनजातियों के लोग अपने शोषको के खिलाफ विरोध प्रकट करते थे और फिर उनके साथ अपनी शर्तो पर समझौता करने को तैयार हो जाते थे जब हिंसक आन्दोलनो में शोषको के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह होता था और उनके आधिपत्य को उखाड़ फेंका

जाता था । अहिंसक आन्दोलन का सबसे सटीक उदाहरण ताना भगत आन्दोलन है तथा हिंसक आन्दोलन का सटीक उदाहरण मुरिया आन्दोलन है। ताना भगत आन्दोलन पूरी तरह अहिसक आन्दोलन था। इस आन्दोलन के द्वारा जनजातीय समुदायों का संरचनात्मक परिवर्तन हुआ। संरचनात्मक परिवर्तन का एक उदाहरण एम. एन. श्री निवास के शब्दों में संस्कृतिकरण था दूसरी ओर मुरिया (मौर्य) आन्दोलन पूरी तरह हिंसक आन्दोलन था इसका उद्देश्य जनजातीय जीवन शैली मे बदलाव लाना तथा जंगलों और जमीन सम्बन्धी जनजाति लोगों के अधिकारों को दुरुस्त करना था।

स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय समाज में जनजातीय आन्दोलनों को कालावधि के आधार पर तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) प्रथम चरण – (1789 – 1860)

(2) द्वितीय चरण (1860–1920)

(3) तृतीय चरण (1920–1947)

इन चरणों के दौरान भारतीय समाज प्रमुख जनजातीय आन्दोलन को इस प्रकार समझा जा सकता है।

तमार विद्रोह – (1789–1832)

तमार जनजातीय समुदाय द्वारा सन 1789 में भोलानाथ सहाय के नेतृत्व में ब्रिटिश हुकूमत के अत्याचारों के खिलाफ विद्रोह शुरु हुआ तथा 1832 तक चला। यद्यपि यह आन्दोलन तमार जनजातियों द्वारा आरम्भ किया था परन्तु शीघ्र ही इसमे मिदनापुर, कोमलपुर, घाघा, चटशिला, जालदा, तथा सिल्ली के अन्य जनजातीय समुदाय भी शामिल हो गये। यह आन्दोलन अंग्रेजों की ब्लेमिष एलाइन सिस्टम के खिलाफ था। अंग्रेजों ने भूमि सुधार कानून लागू करते हुए किसानों से उनकी जमीनों के मालिकाना हक छीन लिये थे जिनमें वे अपनी ही जमीनों से बेदखल हो गये। इस आन्दोलन में ओरांव, मुंडा, द्योस, कोल आदि आदिवासी समुदाय तमार विद्रोह में अपने नेता गंगा सिंह के नेतृत्व के शामिल हुए थे। नई व्यवस्था के अनुसार सरकार ने आदिवासी गांवों के मुखिया जमीदारों की ओर से तैनात करवा दिये थे जिन्हें दिकू कहा जाता था ! विहोह के दौरान आदिवासियों ने इन सबकी हत्या कर डाली, इनके घर जला दिये गये और इनके सामान पर कब्जा कर लिया गया । 1832–33 में अंग्रेजों ने तमार विद्रोह को दबा दिया। हो जनजाति की सम्पति पर अंग्रेजो ने कब्जा कर लिया और अपने अधिकार में लेने के बाद उसे हो जनजाति के मुखिया को सौंप दिया। ब्रिटिश हुकूमत द्वारा बनाये गये कानून के अनुसार अब ये मुखिया इस जागीर के प्रशासक बन गया था

खरवार आन्दोलन (1833) –

संथाल जनजाति को ही पहले खरवार कहा जाता था। अंग्रेजों ने इनकी सारी जमीनों पर कब्जा कर लिया था। 1833 में भागीरथ मांझी नामक आदिवासी नेता ने अपने समूदाय के लोगो को विश्वास दिलाया कि वे अंग्रेजों से लड़कर उन्हें उनकी जमीनों पर फिर से कब्जा दिलवा सकते है लेकिन उन्होंने इसके लिए एक शर्त रखी कि आदिवासियों को हिन्दुओ के इष्ट देव भगवान राम की पूजा करनी पड़ेगी ! अभी आदिवासी बाबा जी नाम से विख्यात भागीरथ मांझी के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खड़े हो गये और 1833 में अंग्रेजों के खिलाफ खरवार आन्दोलन आरम्भ हो गया ।

संथाल विद्रोह (1855)

संथालों की जमीनों पर जमीदारो ने कब्जा कर लिए था। संथाल आदिवासी जमीनो पर अपना हक वापिस लेना चाहते थे। जमीदारों ने इन जमीनों को सूबेदारो के हाथ बेचना शुरू कर दिया । इस पर संथाल आदिवासी भड़क उठे और 1855 में उन्होंने नये मालिकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस आन्दोलन का नेतृत्व हो भाइयों सिधू और कान्हू ने किया । इन दोनो नेताओ ने आदिवासियो पर होने वाले जुल्मो को खत्म करने की कसम खाई थी। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत से साफ कह दिया कि जब तक हम अपनी जमीने जगीरदारों और नये मालिको से वापस नही ले लेते तब तक आन्दोलन जारी रहेगा। इस आन्दोलन के आदिवासियो ने अपने हक के लिए जमीदारों नये मालिको के खिलाफ हथियार उठाये थे। इस आन्दोलन में संथाल आदिवासियों ने जमीदारो के आदमियों से डटकर मुकाबला किया। अंग्रेजो ने जमीदारों का साथ दिया। दो महिने तक चले इस आन्दोलन मे हजारो संथाल आदिवासी मारे गये लेकिन इस विद्रोह का ब्रिटिश हुकूमत पर भारी असर पड़ा और सरकार को अपनी नीतिया बदलने को राजी होना पड़ा। आदिवासियों ने अग्रेजो के कब्जे से बहुत बड़ा भू भाग छीन लिया और अपने कब्जे मे लेने के बाद इसका नाम संथाल परगना रख दिया। सरकार ने बीच का रास्ता निकाला और संथाल परगना का मुखिया ब्रिटिश हुकूमत की देखरेख मे तैनात कर दिया गया।

बोक्ता आन्दोलन –

बोक्ता आन्दोलन छोटा नागपुर के विभिन्न क्षेत्रो मे तीन बार भड़का और उसमें सम्मिलित हुये आदिवासियों ने जमीदारों के अत्याचारों का जमकर विरोध किया। समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह ने बोक्ता आन्दोलन के तीन चरणों को कृषि चरण, पुनरूत्थानवादी तथा राजनैतिक चरण नाम दिये है। कृषि व पुनरुत्थानवादी चरण में आदिवासी किसानों के मालिकाना हक छीन चुके थे। वे उन्हे तरह तरह से परेशान करने लगे थे। इसके कारण आन्दोलन हुए। आन्दोलन के राजनैतिक चरण में आदिवासियों ने यह मांग की थी कि उनके क्षेत्र को देश के बाकी क्षेत्रों से अलग कर दिया जाये और राजनैतिक स्वतन्त्रता दी जाये।

बिरसा विद्रोह – (1895–1901)

बिरसा विद्रोह का नेतृत्व प्रखर, आदिवासी लड़ाकू, महान स्वाधीनता सैनानी, मुण्डा जनजाति के संरक्षक बिरसा मुण्डा ने किया था। मुण्डा ने छोटा नागपुर में मुण्डा जनजाति के किसानों पर सामन्ती व्यवस्था लादने के खिलाफ विद्रोह किया था। यह विद्रोह भी ब्रिटिश हुकूमत, जमीदारो, व्यापारियों व सरकारी अफसरों के

दखल व अत्याचार के विरूद्ध था। मुण्डा आदिवासियों में कृषि भूमि के मामले मे एक व्यवस्था थी जिसे खुंटकारी व्यवस्था कहा जाता था, इस व्यवस्था के अनुसार जो जमीने आदिवासियों के पास थी उन पर उन्ही का हक रहना चाहिए था। जबकि अंग्रेजो ने 1874 में जमीन संबंधी नीतिया बदल दी और आदिवासियों की जमीनों का हक जमीदारों को दे दिया। इनके विरूद्ध आदिवासियों ने आन्दोलन किया। अनेक प्रकार से आदिवासियों का शोषण किया जा रहा था। आदिवासियो को परेशान किया जा रहा था।

आदिवासियो की जमीनों पर कब्जा करने लगे लोग, उन्हें परेशान किया जाने लगा, अत्यधिक कर वसूली इत्यादि के परिणामस्वरूप जनजातियों ने अपने स्वतन्त्र भूभाग की स्थापना करने के लिए बाहरी लोगों को चुनौती दी गई।

मिदनापुर आन्दोलन (1918–1924)

वैसे तो यह आन्दोलन 1760 में शुरु हुआ था परंतु 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस आन्दोलन ने बहुत जोर पकडा। यह आन्दोलन आदिवासियो की जमीनो पर बाहर के लोगों द्वारा कब्जा किये जाने के विरुद्ध छेड़ा गया था। मिदनापुर आन्दोलन का प्रथम चरण महात्मा गांधी के 1921–22 में आरम्भ किये गये असहयोग आन्दोलन के समर्थन मे किया गया था तथा इसका दूसरा चरण तब शुरू हुआ जब गांधी जी को गिरफ्तार किया गया था। 1920 तक जनजातिया असहयोग आन्दोलन से दूर रही। 1921 के प्रारम्भ में यह प्रयास किये गये कि जनजातियो को भी आन्दोलन में शामिल किया जाये। कांग्रेस के समर्थन से बनी मिदनापुर जमीदारी कम्पनी मे आदिवासियों को कम वेतन दिये जाने के विरुद्ध आवाज उठाई इसका आदिवासियो के खुलकर समर्थन किया और वे स्वयं ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध आंदोलन मे उत्तर आये। संथाल आदिवासियों ने हर तरह के अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन को बढ़ावा दिया। 1922 में आदिवासियो ने इस बात पर जोर दिया कि जंगल पर उनका अधिकार सुरक्षित रखा जाये। इस मांग को लेकर आन्दोलन इतना उग्र हो गया कि आन्दोलनकारियों ने मिदनापुर जमीदारी कम्पनी के विरुद्ध तथा भारतीय जमीदारो के विरुद्ध मे खुला संघर्ष छेड़ दिया।

निष्कर्ष :–

उपरोक्त सभी आन्दोलनो की पृष्ठभूमि व कारणों के आधार पर स्पष्ट है कि आदिवासियों के सभी आन्दोलन शोषण एवं दमन के खिलाफ थे । आदिवासियो का दमन करने वालो मे सभी गैर आदिवासी लोग, जमीदार, ठेकेदार, सुदखोर, महाजन तथा सरकारी अधिकारी सम्मिलित थे। स्थानीय लोगो के इन सभी बाहरी तत्त्वो का विरोध किया । इनमें से अधिकतर आन्दोलन आरम्भ में सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्ति के लगते थे। अपने अधिकारो की आवाज उठाते उठाते लगभग सभी आन्दोलन आजादी के लिए राष्ट्रीय आन्दोलनो मे बदल

गये। ब्रिटिश शासन काल मे जमीन संबंधी कानून लागू होने के कारण आदिवासियों की जमीनों पर कब्जा होने, उनसे उनका मालिकाना हक छीनने, उनके कम वेतन पर मजदूरी कराने, अधिक कर देने के लिये दबाव डालने तथा उन पर जमीनो के मालिकाना हक के मामलों मे सामन्ती प्रणाली लाने आदि कारणो से आदिवासी बुरी तरह परेशान हो उठे और उनका आक्रोश देश से उपनिवेश शासन को उखाड़ फेकने के संकल्प के साथ प्रकट हुआ। लगभग सभी आन्दोलन आदिवासियों के पहले से चले आ रहे हको को छीनने के विरुद्ध थे। हर आन्दोलन का नेतृत्व जनजातीय समुदायो के प्रमुखों ने किया। लगभग सभी आन्दोलन अन्ततः उग्र हुए और हिंसक हो गये जिनका दमन करने के लिए प्रशासन के नरसंहार किये। उनके घर जला दिये गये और आन्दोलन को कुचलने का प्रयास किया गया। इस प्रकार जनजातीय समुदायो के आन्दोलनो का भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं भारतीय समाज मे महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ सूची

(1) हुसैन एन.''ट्राइबल इंडिया'' पालका प्रकाशन नई दिल्ली 1991 पृ.सं. 122–124

(2) आर्चर, डब्ल्यू, जी., ''ट्राइबल लॉ एण्ड जस्टिस ए रिपोर्ट ऑफ द सन्थाल्स'', कंसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली –1984 पृ.सं.. 85–88

(3) गुहा रणजीत, ''आदिवासी पॉलिटिक्स इन मिदनापुर'' ऑकफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस दिल्ली – 1985

(4) कोठारी, आर. ''स्टेट एगेंस्ट डेमोक्रेसी इन सर्च ऑफ हयूमन गवर्नेस'' अजन्ता पब्लिकेशन नई दिल्ली 1988 पृ.सं. 132–135

(5) सिंह, सुरेश के. ''बिरसा मुण्डा एण्ड हिज मूवमेंट 1974–1901 ए स्टडी आफ मिलेनेरियन इन छोटा नागपुर,'' आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस कलकत्ता 1983. पृ.सं. 48–50

(6) ऑन्वेल्ट, जी. ''हिन्दुज्म एण्ड पॉलिटिकल इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली वॉल्यूम 25'' 1990 पृ.सं. 723–29